CHETANA
International Journal of Education

Impact Factor
SJIF=5.689

Peer Reviewed/
Refereed Journal

ISSN-Print-2231-3613
Online-2455-8729

Prof. A.P. Sharma
Founder Editor, CIJE
(25.12.1932 - 09.01.2019)

Received on 24th Nov. 2020, Revised on 28th Nov. 2020, Accepted 15th Dec. 2020

आलेख

नाट्य.संप्रेषण और भरत प्रणीत नाट्यशास्त्र

* द्विवेदी आनंद प्रकाश शर्मा
एसोसिएटप्रोफ़ेसर (हिन्दी)
दिल्ली कॉलेजऑफ़आर्ट्स एंड कॉमर्स, दिल्ली विश्वविद्यालय
Email: dapsdu@gmail.com, Mobile: +91 98 6855 4484

मुख्य शब्द : नाट्य, नाट्यकर्म, नाट्यवेद, पंचमवेद, संप्रेषण, नाट्य-संप्रेषण, संकेत, संकेतन *आदि.*

सार

नाट्य, संश्लिष्ट कला होने के साथ-साथ समाज से संप्रेषण का महत्त्वपूर्ण साधन भी रहा है।भारत में नाट्य की उपस्थिति और उसका अविच्छिन्न प्रवाह यह बताता है कि समाज से इसका गहरा संबंध होगा और इस संबंध की पृष्ठभूमि में संप्रेषण की भूमिका अवश्य ही रही होगी। इस दृष्टि से पंचम वेद के रूप में ख्यात, भरत कृत *नाट्यशास्त्र* की संरचना विशेष उल्लेखनीय है।नाट्य को संप्रेषण के साधन के रूप में विकसित करने तथा समाज के हर वर्ग और समूह को उससे जोड़ने का उपक्रम निरुद्देश्य नहीं हो सकता। इस आलेख में हमारा यह मानना है किनाट्य की उत्पत्ति तत्कालीन परिस्थितियों में समावेशी उद्देश्यों की पूर्ति के साधन के रूप में हुआ होगा जिससे कि सभी समुदायों से संवाद और संपर्क स्थापित किया जा सके। इस प्राविधि को आज के राजनीतिक परिदृश्य के माध्यम से समझा जा सकता है। सामाजिक और सामूहिक संप्रेषण के उद्देश्य से,नाट्य के रूप में व्यापक प्रभाव वाली कलात्मक निर्मिति, प्राचीन भारत के सांस्कृतिक विकास की महत्त्वपूर्ण परिघटनाहै। यहाँ हम संप्रेषण की प्रक्रिया और नाट्य-संप्रेषण-व्यापार को समझते हुए नाट्यशास्त्र में निर्दिष्ट नाट्य-संप्रेषण के स्वरूप और उसकी शक्ति को समझने का प्रयास करेंगे।

नाट्य

नाट्यशास्त्र(ई.पू.दूसरी शताब्दी)के प्रथम अध्याय में नाट्य का स्वरूप वर्णित है।नाट्य 'धर्म और अर्थ तथा यश की प्राप्ति कराने वाला, उपदेश देने वाला, उपदेश को अच्छी तरह ग्रहण कराने वाला, संसार के सभी कर्मों का अनुदर्शन कराने वाला, तथा कलाविषयक समस्त शास्त्रों - नृत्त, गीत और वादन आदि से युक्त समस्त शिल्पों का प्रवर्तक है[1]। भरत मुनि के

नाट्यप्रयोग में असुरों द्वारा विघ्न-बाधा उपस्थित करने पर ब्रह्मा ने असुरों को जिसप्रकार समझाया है उससे प्राचीन भारतीय नाट्य-दर्शन की संकल्पना स्पष्ट है :

"इस नाट्य में सब लोगों के शुभ-अशुभ की चिंता की जाती है। यह कर्म, भाव और वंश का प्रकाशक है। इसमें किसी एक के अनुभवों का निरूपण नहीं होता, तीनों लोकों के भावों का अनुकीर्तन होता है। इसमें कहीं धर्म रहता है, तो कहीं क्रीड़ा, कहीं अर्थ तो कहीं शम, कहीं हास्य तो कहीं युद्ध, और कहीं-कहीं काम तो कहीं वध प्रदर्शित होता है। यह धर्म में प्रवृत्त लोगों के लिए धर्मस्वरूप है, काम में प्रवृत्त लोगों के लिए काम है, दुर्विनीत लोगों को अनुशासित करने वाला है तथा विनीत लोगों केलिए दूसरों को अनुशासन में रखने का पाठ पढ़ाने वाला भी है।यह क्लीवों में ढिठाई भर सकता है, वीरों में उत्साहका संचार कर सकता है, मूर्खों को प्रबुद्ध कर सकता है और विद्वानों में और भी विद्वत्ता ला सकता है। धनियों के लिए यह विलास है, पर दु:ख से आकुल के लिए स्थिरता लाने वाला है, अर्थोपार्जन करने वालों के लिए धन-प्राप्ति का साधन है, उद्विग्न चित्त वालों के लिए धीरज दिलाने वाला है। तरह-तरह के भावों से संपन्न, तरह-तरह की अवस्थाओं से युक्त लोकवृत्त का अनुकरण प्रस्तुत करने वाला नाट्य होता है। दु:ख से आकुल, श्रम से क्लांत, शोक से आर्त दीनों के लिए यह दिलासा बन सकेगा[2]।'

'नाट्य' शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है जिसके अंतर्गत नाट्यालेख(स्क्रिप्ट) से लेकर मंच(स्टेज) पर नाट्यप्रदर्शन(परफौरमेंस) से संबंधित सभी क्रियाएँ शामिल हैं।'नाट्य' के लिए हिन्दी में समेकित रूप में रंगकर्म (थियेटर) शब्द प्रचलित है।

नाट्य की उत्पत्ति

नाट्य-प्रयोग की भव्यता को देखकर यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि नाट्य के रूप में ऐसी उत्कृष्ट कला,प्राचीन भारतीय समाज समाज में कैसे प्रचलित हुई होगी?भरत कृत नाट्यशास्त्र,नाट्य की उत्पत्ति के दैवी स्वरूप का प्रतिपादन करता है।नाट्यशास्त्र के अनुसार देवताओं ने ब्रह्मा से निवेदन किया कि हे पितामह! हम कोई ऐसा क्रीडनीयक खेल चाहते हैं जो दृश्य भी हो और श्रव्य भी। जो वेद-व्यवहार है वह शूद्र जातियों को सिखाया नहीं जा सकता, अतएव आप सब वर्णों के योग्य किसी पाँचवे वेद(पंचमवेद) की सृष्टि कीजिए। ब्रह्मा ने एवमस्तु! कहकर पंचम वेद के सृजन का संकल्प किया। इस प्रकारब्रह्मा ने सभी वर्णों के मनोविनोद के लिएऋग्वेद, सामवेद,यजुर्वेद और अथर्ववेद से क्रमश: पाठ्य(कथावस्तु), गान(गीत), अभिनय और रस लेकर पंचमवेद (नाट्य) का निर्माण किया। भरत को बुलाकर पितामह(ब्रह्मा) ने निर्देश किया कि तुम अपने सौ पुत्रों के साथ इस नाट्यवेद के प्रयोक्ता बनो।[3]

भारत में कला और रचना को दैवी निर्मिति के रूप में प्रस्तुत करने के पीछे एक विशिष्ट दार्शनिक चिंतन रहा है जिसके विस्तार में जाने का समय यहाँ नहीं है।उपर्युक्त कथा का कई दृष्टियों से महत्त्व है। पहला तो यह कि चतुर्वेद से भिन्न पाँचवा वेद होते हुए भी नाट्यके मुख्य अंग चारों वेदों से लिए गए हैं, इस कारण यह वेदों से अलग भी है और संबद्ध भी। दूसरी बात है कि यह सार्ववर्णिक है (सभी जातियों के लिए) अर्थात समावेशी है। ऊपर, जिस कथा का उल्लेख है, भरतमुनि

के अनुसार उस समय त्रेता युग प्रवर्तित हो चुका था। तब जम्बूद्वीप(भारत) देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, असुर एवं नागों आदि से आक्रान्तथा। लोग दुःख और अशांति के शिकार हो चले थे।[4] यह तथ्य वैदिक युग के बाद घटित व्यापक सामाजिक परिवर्तन की सूचना देता है। इससे यह पता चलता है कि उस समय तक भारत में अनेक जाति- समूहों का उदय हो चुका था। ऐसे में समाज के सभी वर्गों और समूहों से संपर्क एवं संवाद स्थापित करने के इस उद्देश्य के पीछे कोई तात्कालिक कारण होगा जो मनोरंजन-पूर्ति से अलग होगा। संभव है कि नाट्य की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि में सामाजिक-आर्थिक कारण रहे हों।

रोमिलाथापर के अध्ययन[5] से पता चलता है कि दूसरी-तीसरी शती ई.पू. में भारत का रोम के साथ व्यापार बेहतर स्थिति में था।ग्रीक इतिहासकार प्लिनी का हवाला देते हुए रोमिलाथापर ने यह बताया है कि रोम की अर्थव्यवस्था व्यापार घाटा झेल रही थी जबकि,भारत लाभ में था।व्यापार में लाभ और विदेशी मुद्रा के भण्डार से भारतीय अर्थव्यवस्था में मजबूती आई और नगरीकरण का विस्तार हुआ।समझा जाता है कि नगर-संस्कृति में चाक्षुष मनोरंजन के साधन की माँग बढ़ी होगी जिसकी पूर्ति नाट्य के माध्यम से पूरी हुई होगी।

नाट्य की उत्पत्ति के संभावित कारणों के संबंध में तत्कालीन सामाजिक स्थिति पर भी विचार किया गया है।कुछ विद्वानों का मत है कि बौद्ध धर्म की लोकप्रियता की वजह से वैदिक सर्वोच्चता केवर्चस्व को कायम रखने की चुनौती थी।सामाजिक व्यवस्था में उपेक्षित हो चुकीं निम्न जातियों केलिए उदार और समावेशी बौद्ध धर्म एक समर्थ विकल्प के रूप में सहज उपलब्ध था।ऐसे में वैदिक सर्वोच्चता को संभवतः एक ऐसे उपयुक्त साधन की आवश्यकता थी जो सभी जातियों और सामाजिक श्रेणियों से सुरुचिपूर्वकसंवाद भी करे और प्रकारांतर से वेद-विधान का प्रवर्तनभी।पंचम वेद के रूप में नाट्य को सभी जातियों के लिए सुलभ बनाने और उनका मनोरंजन करने के पीछे शायद यह भी कारण रहा हो।[6]हालाँकि, भारतीय विचारधारा ऐसी किसी वैदिक-बौद्ध प्रतिद्वंद्विता को निराधार मानती है और उपर्युक्त मत का कोई पुष्ट प्रमाण भी नहीं है।

जो भी हो यह तो मानना ही होगा कि नाट्यकी उत्पत्ति से प्राचीन भारतीय जीवन में एक ऐसी अपेक्षा पूरी हुई होगी जिसे किसी अन्य व्यक्तिगत या सामुदायिक गतिविधि के माध्यमसे प्राप्त नहीं किया जा सकता था। अब प्रश्न उठता है कि इस नाट्य ने समाज के विभिन्न समूहों से संप्रेषण करते हुए किस प्रकार संबंध स्थापित किया होगा।इसके लिए संप्रेषण और नाट्य-संप्रेषण को समझना जरूरी है।

संप्रेषण

प्रश्नहै कि नाट्य, अभीष्ट अर्थ या आशय या सन्देश को दर्शकों तक कैसे ले जाता है? अर्थात् नाट्य किस प्रकार संप्रेषण के माध्यम के रूप में कार्य करता है। यहाँ संप्रेषण की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है।सम्यक् प्रेषण(transmission) संप्रेषण है। किसका प्रेषण? उत्तर है, विचारों, भावों या अनुभवों का प्रेषण। किसको प्रेषण? उत्तर है, व्यक्तियों को। किस चीज के द्वारा प्रेषण? उत्तर है, विशिष्ट प्रतीकों/चिह्नों (significant symbols)द्वारा।सम्यक् रूप में इस प्रक्रिया का नाम संप्रेषण है। इस क्रिया

के द्वारा कोई व्यक्ति या व्यक्ति-समूह किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्ति-समूह तक अपने भावों या विचारों के प्रेषण का प्रयास करता है।इस प्रक्रिया को निम्नांकित सारणी के माध्यम से समझा जा सकता है :

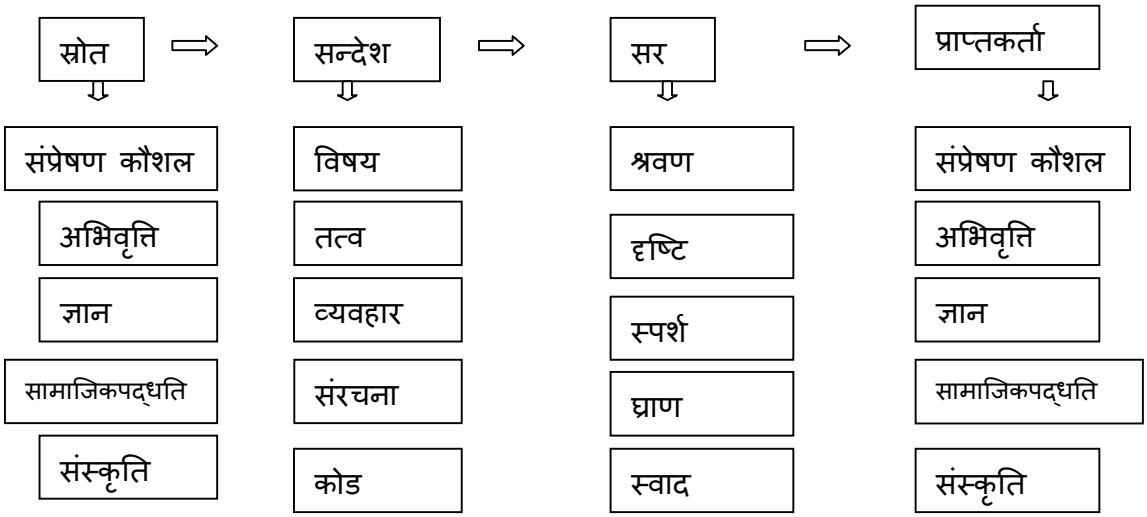

संप्रेषण सामाजिक जीवन का अभिन्न और महत्वपूर्ण अंग है। अर्थ के संप्रेषण के बिना समाज नामक संस्था का अस्तित्व असंभव है। संप्रेषण, इस प्रक्रिया में शामिल साझेदारों के बीच सूचनाओं का आदान-प्रदान करते हुए साझापन(commonness) स्थापित करता है। कुछ समय तक संप्रेषण की निरंतरता के परिणामस्वरूप साझेदारों के मन में कुछ खास प्रवृत्तियाँ और मूल्य घर कर जातीं हैं। इस प्रकार व्यक्तियों का समूह साझी जीवन-पद्धति पर आधारित समाज का रूप ले लेता है। संप्रेषण यानी अनुभवों के आदान-प्रदान से ही समाज में संबंध-स्थापन संभव हो पाता है। व्यक्ति और समाज का आपस में संबद्ध होना इस साझेपन के आदान-प्रदान की वजह से ही संभव है।नाट्य में अभिनेता और दर्शक के बीच संप्रेषण का लक्ष्य समाज में साझेपन का संबंध-स्थापन ही है।नाट्य इस संबंध-स्थापन की प्रक्रिया का माध्यम है और संप्रेषण इस संबंध-स्थापन का आधार।लेकिन, नाट्य-संप्रेषण, सामान्य संप्रेषण से भिन्न और विशिष्ट है। इस भिन्नता और विशिष्टता को जानना जरूरी है।

नाट्य-संप्रेषण

नाट्य-संप्रेषण सामान्य संप्रेषण नहीं है, अर्थात् यह बिल्कुल वैसा ही संप्रेषण नहीं है जैसा कि हम प्राय: एक दूसरे के साथ संप्रेषण करते हैं। ऐसा इसलिए कि सामान्य संप्रेषण में प्राय: संकेत-वहन एकल या अमिश्रित होता है जबकि नाट्य में यह मिश्रित या संश्लिष्ट होता है।चूँकिनाट्यसंश्लिष्ट(मिश्रित) कला है इसलिए नाट्य-संप्रेषण की संकेत-प्रक्रिया में क्रियाशील संकेत बहुलताको समझना जरूरी है।असल में, नाट्य-प्रदर्शन में अर्थ का उद्भावन इतना समृद्ध, बहुस्तरीय और प्रवाही होता है कि उसके संकेतों को अलग-अलग रूप में व्याख्यायित करना दुष्कर भी है और ऐसा करने पर नाट्य-प्रदर्शन के समन्वित स्वरूप को खंडित करने का जोखिम भी रहता है।वस्तुत: नाट्य-संप्रेषण कई प्रणालियों का एकीकृत रूपहै।नाट्य-संप्रेषण में

अन्तर्निहितप्रणालियों का एक दूसरे से क्या अंतर्संबंध होता है और प्रस्तुति तथा दर्शक की द्वंद्वात्मकता में किन विधियों से अर्थ का संचार होता है, इसे जानकर ही नाट्य-संप्रेषण की प्रक्रिया को समझा जा सकता है।नाट्य-संप्रेषण के अध्येता के लिए केवल संकेतन के साधनों को ही जानना जरूरी नहीं है, बल्कि संप्रेषण के प्रतिफल की चिंता भी अनिवार्य है।सच पूछें तो नाट्य के अर्थ का उद्भावन और संप्रेषण-व्यापार सीमातीतअध्यवसाय है, इसलिए कि विविध सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं का दबाव इस व्यापार में प्रकट या प्रच्छन्न रूप में व्याप्त होता है।

नाट्य-संप्रेषण का आधारभूत मॉडल

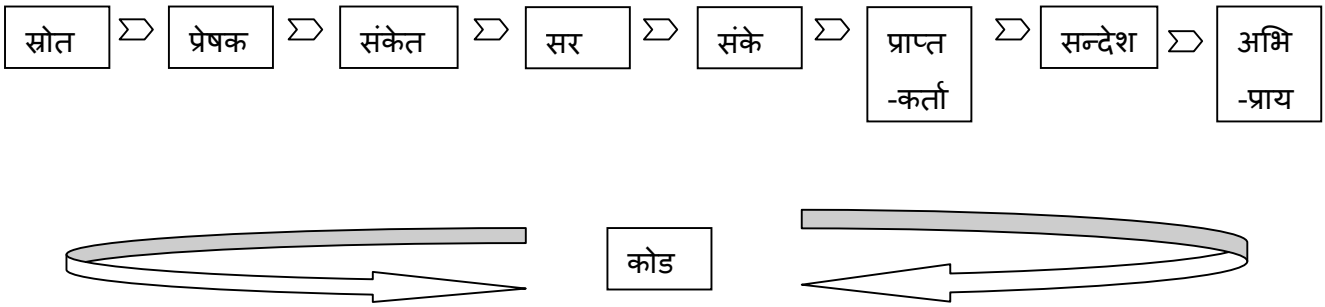

प्राग स्कूल और नाट्य-संकेत विज्ञान

पश्चिम में उन्नीसवीं शती के दूसरे दशक तक नाट्य-प्रस्तुति के आलोचनात्मक विश्लेषण में नाट्य-संप्रेषण के वैज्ञानिक अध्ययन का कोई स्थान नहीं था और नाट्य-आलोचन में अरस्तु प्रवर्तित शास्त्रीय पद्धति ही हावी रही। लेकिन,सन1931 में महत्त्वपूर्ण मोड़ आया।*आत्करज़िच (एस्थेटिक्सऑफ़ आर्ट ऑफ़ ड्रामा 1931) और जन मुकारोव्स्की(एनअटेम्पटेडएनेलिसिसऑफ़ द फेनोमेननऑफ़ द ऐक्टर 1931)* के अध्ययनों ने नाट्य-आलोचन की दिशा बदल दी। अब नाट्य-प्रस्तुति के भाषिक, संप्रेषणपरक और वैज्ञानिक अध्ययन का मार्ग प्रशस्त हुआ।नाट्य-प्रस्तुति की संकेत-प्रक्रिया का यह अभिनव विश्लेषण आगामी दो-तीन शताब्दियों तक नाट्य-विमर्श के केंद्र में रहा। कलात्मक और संकेतन क्रियाओं से संबंधित प्राग स्कूल के संरचनावादी अध्ययन के सन्दर्भ में पश्चिमी और पौर्वात्यनाट्य के सभी रूपों पर गहन विमर्श हुआ ताकि संकेत-प्रक्रिया पर आधारित कलात्मक संप्रेषण के विधिवत अध्ययन की स्थापना हो सके।[7]

संकेत (The Sign),**संकेतन** (Semiotization), और **नाट्य प्रदर्शन में सूचनाओं का प्रेषण**

नाट्य-संप्रेषण में संकेत से तात्पर्य द्योतन कराने वाले भौतिक वाहकों(vehicle) से है, लेकिन यहाँ ध्यान रखना आवश्यक है कि संकेत का संबंध मानसिक संकल्पना से है और उसी के अनुरूप संकेतों का चयन एवं निर्धारण किया जाता है।इसलिए नाट्य-संप्रेषण में संभावित सक्षम संकेतों की पहचान और उनके प्रभाव का विश्लेषण महत्वपूर्ण हो जाता है।

नाट्य-प्रस्तुति में जब कोईतत्त्व स्पष्ट रूप में किसी भाव-विचारया अर्थ का बोध कराए तो उस प्रक्रिया को संकेतन समझना चाहिए।नाट्य-प्रदर्शन में दर्शक के सामने जो कुछ भी उपस्थित किया जाता है वह सब संकेत है और उसका प्रयोजन सन्देश या अर्थ का द्योतन है।नाट्य-प्रेक्षण के क्रम में दर्शक की बुद्धि और उसका अनुभव संकेतों को द्योतन-प्रणाली से एकाकार करते हुए सौन्दर्य की अनुभूति की यात्रा करता है। यह प्रक्रिया संकेतन है।

नाट्य-संप्रेषण की प्रक्रिया में संप्रेषण के विविध साधन समुच्चय रूप में क्रियाशील रहते हैं।नाट्य-संप्रेषण में सूचनाओं के स्रोत नाटककार, उसके द्वारा लिखित स्क्रिप्ट, और निर्देशक हैं जो निर्णय, निर्देश और प्रेषण-माध्यमों का चयन करते हैं तथा सक्षम संकेतों का निर्धारण करते हैं जिनसे सन्देश या अर्थका द्योतन होताहै। अन्यसभी रंगकर्मी अभिनय, ध्वनि, प्रकाश, संगीत-वाद्य, मंचसज्जा, वेशभूषा आदि के माध्यम से मुख्य निर्णायक के सहयोगी की भूमिका में सूचनाओं के संप्रेषण को संपुष्ट करने का काम करते हैं। इन सबके समन्वित संकेतन से ही प्रस्तुति के सन्देश का ग्रहण संभव है।

भरत कृत नाट्यशास्त्रमेंनाट्य-संप्रेषणके तत्त्व

नाट्यकर्म या रंगकर्म और दर्शक के बीच प्रभावशाली सम्प्रेषणके अनुरूप नाट्य-युक्तिओं का विधान करने वाला विश्व नाट्य-परंपरा का पहला ग्रन्थ नाट्यशास्त्र ही है। रंगकर्मी और दर्शक की मन:स्थितियों का विशद विवेचन करने वाला ऐसा स्रोत आज भी दुर्लभ है। पश्चिम में नाट्य के संकेतवैज्ञानिकअधययन का आरम्भ, बीसवीं शती(1931) की घटना है। यह जानकार सुखद आश्चर्य होता है कि प्राचीन भारतीय नाट्य के गौरवग्रन्थनाट्यशास्त्रमें आधुनिक नाट्य-संकेतविज्ञान(थियेटरसिमियोटीक्स) और नाट्य-संप्रेषण की बारीकियों का कैसे समावेश किया गया होगा।नाट्य-सम्प्रेषण की दृष्टि से नाट्यशास्त्र का अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट है कि नाट्यशास्त्र का कर्ता आरंभ से अंत तक इस बात के प्रति सचेत है कि नाट्यकर्म और दर्शकों के बीच उत्कृष्ट संप्रेषण हो। इससे अवगत होने के लिए यहाँ अध्याय-क्रम से नाट्य-संप्रेषण के तत्त्वों को रेखांकित करने का प्रयास है:

प्रेक्षागृह के बारे में भरत बताते हैं कि नाट्यमण्डपविकृष्ट, चतुरश्र तथा त्र्यश्र तीन प्रकार के होते हैं और उनके ज्येष्ठ, मध्य, तथा अवर तीन प्रमाण(नाप) हैं।

<table>
<tr><td colspan="3">नेपथ्य 32 x 16 हाथ</td></tr>
<tr><td colspan="3">रंगशीर्ष 32 x 8 हाथ</td></tr>
<tr><td></td><td>रंगपीठ 16 x 8 हाथ</td><td></td></tr>
</table>

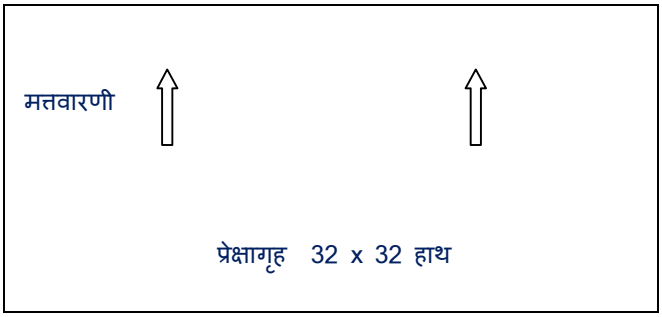

विकृष्ट मध्य नाट्यमण्डप

चतुरस्रनाट्यमण्डप

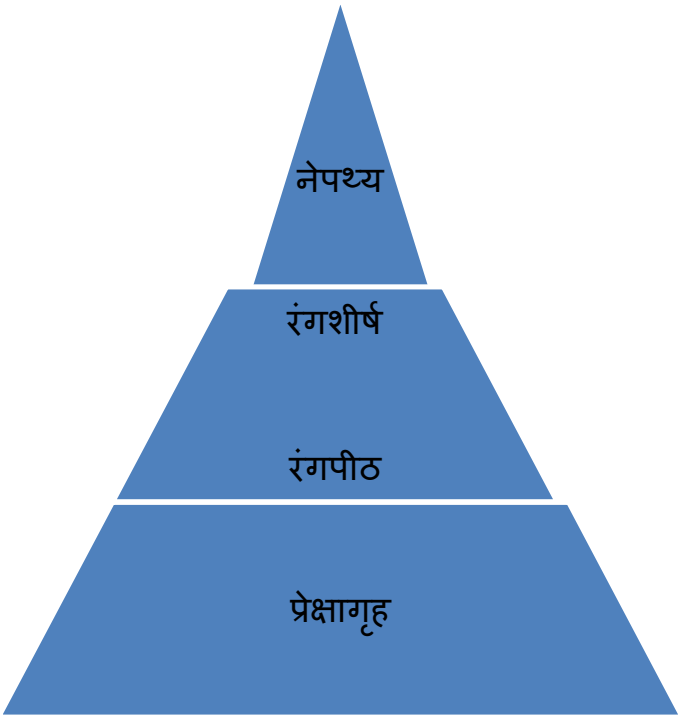

त्रिकोण नाट्यमण्डप

नाट्यमण्डप बनाने वालों को विकृष्ट से बड़े नाट्यमण्डप नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि इससे बड़े नाट्यमण्डप में नाट्य पूरी तरह दृश्य और श्रव्य नहीं हो पायेगा। बड़े नाट्यमण्डप में पाठ्य के स्वर उच्चरित होने पर वे भीतर गूँजेंगे और अत्यधिक विस्वर हो जाएँगे तथा अभिनेता के मुख की विभिन्न दृष्टियों से समन्वित भाव भी नाट्यगृह की दीर्घता के कारण अत्यंत अस्पष्ट दिखाई देंगे। इसलिए सारे प्रेक्षागृहों में मध्यम सबसे उपयुक्त माना गया है, क्योंकि उसमें पाठ्य और गेय अपेक्षाकृत अधिक श्रव्य होता है।नाट्यशास्त्र में उपर्युक्त तीनों प्रकार के नाट्यमंडपोंऔर उनके अंतर्गत रंगपीठ, नेपथ्य, रंगशीर्ष, मत्त्वारिणी आदि के स्थापत्य की विस्तृत योजना निर्देशित है जिससे कि नाट्य-संप्रेषण अबाध हो।

नाट्य में नृत्त (नृत्य) का विशेष महत्त्वहै।नाट्यशास्त्र सन्दर्भ और स्थिति के अनुसार नृत्य-प्रयोग का विस्तृत विधान तो करता ही है, साथ ही नृत्य में हस्त और पाद के समायोग(एक साथ संचालन) को भी समझाता है। किस स्थिति में किस प्रकार के नृत्य का प्रयोग होना चाहिए इस विषय में नाट्यशास्त्र का दृष्टिकोण नाट्य-संप्रेषण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है - जहाँ दम्पति के बीच प्रेम-चर्चा हो वहाँ अत्यधिक हर्ष से उदभूत नृत्त का संयोजन किया जाय। जहाँ प्रिय के समीप नायिका, अनुकूल ऋतु या समय का अनुभव करे वहाँ भी गीत के अर्थ से जुड़ा नृत्त हो सकता है। जिस अंग में खंडिता, विप्रलब्धा या कलहान्तारिता युवती हो वहाँ नृत्त का प्रयोग न करे। यदि सखियों के बीच बातचीत चल रही हो, प्रिय पास में न हो या नायिका का प्रिय विदेश गया हो तो वहाँ भी नृत्त का प्रयोग न करे।पाँचवे अध्याय में पूर्वरंग के अंतर्गत कुतप(आर्केस्ट्रा) और गायन-वाद्य की क्रियाविधि के निर्देश में भी नाट्य-संप्रेषण की चिंता दिखाई पड़ती है।छठे और सातवें अध्याय में जो रस और भाव निरूपण है वह नाट्यशास्त्र का प्राण है और भारतीय नाट्य-विमर्श परंपरा की अद्वितीय उपलब्धि है। संकेतन की प्रक्रिया की दृष्टि से नाट्य में भाव-निरूपण पर विचार किया जाना चाहिए।आंगिक अभिनय के माध्यम से नाट्य-संप्रेषण सर्वाधिक प्रभावी होता है। आठवें अध्याय से लेकर बारहवें अध्याय तक आंगिक अभिनय और उसके अंतर्गत हस्त और चारी विधान का जिस रूप में उल्लेख है वह प्रेक्षकों को आकृष्ट करने वाला है।

प्राचीन भारतीय नाट्यकर्म में रंगमंच पर कुछ क्षेत्रों का काल्पनिक विभाजन करने की परंपरा होगी इसलिए नाट्यशास्त्रके तेरहवें अध्याय में उनके संप्रेषण के लिए कक्ष्या-विभागकी युक्ति बताई है जिससे मंच का काल्पनिक विभाजन दर्शकों को द्योतन-प्रणाली के माध्यम से संप्रेषित हो जाती है।नाट्य संप्रेषण में वाचिक अभिनय का क्या महत्त्व है यह बताने की जरूरत नहीं है।नाट्यशास्त्र के चौदहवें, पन्द्रहवें और सोलहवें अध्याय में वाचिक अभिनय का जो सूक्ष्म विधान है उसकी पृष्ठभूमि में नाट्य-संप्रेषण की चिंता ही क्रियाशील मालूम पड़ती है।नाट्यशास्त्र कहता है कि - अभिनेता को वाक् के विषय में प्रयत्न करना चाहिए,क्योंकि यह वाक् नाट्य का शरीर है। आंगिक सात्विक और आहार्य ये वाक्यार्थ को व्यंजित करते हैं। सारे शास्त्र वाक् से व्याप्त और वाक् से निर्मित हैं इसलिए वाक् से परे कुछ भी नहीं है, वाक् ही सबका कारण है। छंद से रहित शब्द नहीं और शब्द से रहित छंद नहीं, इस प्रकार इन दोनों का संयोग नाट्य को चमका देता है।

नाट्यशास्त्र में नेपथ्य (वेशभूषा, प्रसाधन और रंगोपकरण) की विधि को आहार्य अभिनय के अंतर्गत रखा गया है।नाट्यशास्त्र में नेपथ्य चार प्रकार के हैं - पुस्त (मंच पर दिखाई जाने वाली भौतिक वस्तुएँ), अलंकार(कॉस्टयूम), अंगरचना(मेकअप) तथा संजीव(रंगमंच पर प्राणियों का उपस्थित होना)। इन सब साधनों के निर्माण के लिए उचित विधि बताई गयी है ताकि, प्रेक्षक से यथेष्ट संप्रेषण हो।

नाट्यशास्त्रका कर्ता कहता है कि इस मनुष्य लोक में मनुष्यों के काम में आने वाली जो भी वस्तु है, वह सब नाट्य में उपकरण कही जा सकती है।नाट्य-संप्रेषण में आहार्य अभिनय की क्या भूमिका है, इसे नाट्यशास्त्र के इस कथन से जाना जा सकता है -'जिस प्रकार जीव एक देह को छोड़कर अन्य देह में प्रवेश करने पर उसी अन्य देह के स्वभाव को प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार वेष और रंगों से आच्छादित अभिनेता भी जिसकी भूमिका करता है, उसी के भाव को व्यक्त करने लगता है'(बीसवाँ अध्याय)।

नाट्य-संप्रेषण में पात्रों की भूमिका का सर्वाधिक महत्त्वहै।नाट्यशास्त्र का कर्ता इसके प्रति सचेत है।नाट्यमें भूमिका के अनुसार पात्रों के चयन का सूक्ष्म और स्पष्ट निर्देश है।नाट्यशास्त्र का मंतव्य है कि भूमिका देने में पात्रों के स्वभावगत गुणों की पहचान की जाय। ऐसा इसलिए कि अभिनय यथासंभव स्वाभाविक हो और नाट्य-संप्रेषण प्रभावी।तेईसवें अध्य्याय में विशेष प्रकार के आंगिक अभिनय जिसे नाट्यशास्त्रचित्राभिनय कहता है, का निर्देश है। जीवन की उन स्थितियों को, जिन्हें मंच पर साक्षात प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, पात्रों द्वारा हाव-भाव से संप्रेषित करना चित्राभिनय कहलाता है।प्रभात, रात्रि, साँझ, दिन, बादल, चाँदनी, वायु, सूर्य, गरमी, धुल, धुआँ आदि स्थितियों को हाव, भाव और मुद्रा से कैसे संप्रेषित किया जाय,नाट्यशास्त्र इसका विस्तृत निर्देश चित्राभिनय के अंतर्गत करता है।(चौबीसवाँ और बत्तीसवाँ अध्याय)

अभिनेता के अभिनय को संपुष्ट करने वाले तकनीकी साधन नाट्य-संकेतन की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।नाट्यशास्त्र,नाट्यगृहउद्योतन(प्रकाश-व्यवस्था) के लिए घड़े का भेदन कर विधिपूर्वक प्रदीप्त दीपिका से रंगमंडप को प्रकाशित करने का निर्देश करता है (तीसरा अध्याय)। छब्बीसवें अध्याय में आतोद्य विधान(वाद्य) के अंतर्गत नाट्यशास्त्र विभिन्न प्रकार के वाद्य से नाट्यप्रदर्शन को संपुष्ट करने का निर्देश करता है जबकि सत्ताईसवें अध्याय(जातिविचार) में रसानुकूल गायन की प्रयोगविधि का निर्देश है। इसी प्रकार अट्ठाईसवें, उनतीसवें और तीसवें अध्याय में क्रमश: संगीत, ताल, ध्रुवा(यति,गति लय आदि) विधियों का निर्देश है। इस सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि नाट्यशास्त्र इन प्रयोगाविधियों के प्रभाव से अवगत है और इसी दृष्टिकोण से वह नाट्यप्रयोक्ताओं को निर्देश करता है। यदि ध्वनि,प्रकाश,गान और वाद्य,नाट्य के साथ एकाकार न हुए तो नाट्य का सम्यक् संप्रेषण न हो पायेगा। इसलिए नाट्यशास्त्र का मंतव्य है कि - प्रयोग करते हुए'नाट्य प्रयोक्ताओं को गान,वाद्य, और नाट्य को अलातचक्र(मशाल को घुमाने से बनने वाला मंडल)के समान मिलाकर प्रयुक्त करना चाहिए।'

नाट्य-संप्रेषण की दृष्टि से नाट्यशास्त्र की कुछ अनुपम विशेषताएँ हैं। इस सन्दर्भ में कक्ष्याविभाग और चित्राभिनय की चर्चा हम कर चुके हैं। इसी क्रम में संवादयुक्तियों की चर्चा आवश्यकहै।नाट्यशास्त्र(अध्याय चौतींस)तीन संवादयुक्तियों को बताता

है -आकाशभाषित, अपवारित, और जनांतिक। जो पात्र शरीर रूप में मंच पर उपस्थित न हो उससे मंच पर उपस्थित पात्र के बात करने की युक्ति आकाशभाषितहै।इसमें मंच पर उपस्थित पात्र अदृश्य पात्र के उत्तर की कल्पना करके बातचीत को आगे बढ़ाता है। निगूढ़ भावों से संयुक्त कथन अपवारितहै।हृदय में चलने वाले तर्क-वितर्क या मनोभाव के गूढ़ अर्थ को प्रकट करना जनांतिकहै। इसे पात्र एक दूसरे के कान में कहते हैं।नाट्य-संप्रेषण की दृष्टि से इन संवादयुक्तियों का महत्त्व निर्विवाद है।

नाट्य-सम्प्रेषण(अध्याय तेंतीस)में कोई व्यवधान न हो इसलिए नाट्यशास्त्र का मंतव्य है कि प्रार्थना के समय, भोजन के समय, दोपहर और मध्यरात्रि में नाट्य-प्रदर्शन न किया जाय। इसके अतिरिक्त प्रस्तुति की मनोदशा के अनुसार किसी भी समय का चयन किया जा सकता है।सामान्यत: सद्गुण आधारित प्रस्तुतियाँ पूर्वाह्न में जबकि कैशिकी अभिनय युक्त शृंगारिक प्रस्तुतियाँ सांध्य वेला में प्रस्तुत की जाएँ।चूँकि, नाट्यप्रदर्शन परिवार के सदस्यों के साथ देखने के लिए है इसलिए,चुम्बन, स्तनविमर्द आदि गोपनीय कार्य मंच पर न कराए जाएँ।

नाट्यप्रदर्शन में प्रेक्षक(दर्शक), नाट्यकुशल(समीक्षक) एवं प्राश्निक(निर्णायक) की महत्त्वपूर्णभूमिका है।नाट्यशास्त्रइसकी सविस्तर चर्चा सिद्धिनिरूपणके अंतर्गत करता है।नाट्यशास्त्रकी दृष्टि में आदर्श दर्शक वह है जो प्रस्तुति को समीक्षात्मक निगाह से देखे। भिन्न-भिन्न आयु के दर्शकों की क्या पसंद होती है, उसे मालूम है। युवा दर्शक शृंगारिक प्रस्तुति में रूचि लेता है, धर्मपरायण दर्शक धार्मिक-दार्शनिक प्रस्तुति देखना चाहता है औरबुज़ुर्ग दर्शक पौराणिक और सद्गुण आधारित प्रस्तुतियों को पसंद करते हैं। धन की चाह रखने वाले दर्शक ऐसी प्रस्तुति ढूँढ़ते हैं जिसमें धनवान होने का वर्णन हो। शौर्य प्रिय दर्शक, युद्ध और लड़ाई वाली प्रस्तुतियों को पसंद करते हैं। बाल दर्शक, स्त्री और मूढ़ दर्शक हास्यप्रद, आकर्षक वेशभूषा और तड़क-भड़क सज्जा वाली प्रस्तुतियों से प्रभावित होते हैं।इसलिए नाट्यप्रदर्शन में इनका ध्यान रखा जाना चाहिए।नाट्य-संप्रेषण कितना सफल हुआ और कहाँ कमी रह गई, नाट्यशास्त्र इसके प्रति भी जागरुकहै। इसलिए नाट्यशास्त्र का मानना है कि समीक्षकों(नाट्यकुशल) को सिद्धि (सफलता) और घात(व्यवधान) दोनों का योग लिखकर समीक्षा करनी चाहिए कि नाट्यप्रदर्शन में कहाँ सिद्धि है और कहाँ घात।प्रत्येक नाट्यप्रयोग के प्राश्निक या निर्णायक बनाने चाहिए।प्राश्निकनाट्य अध्ययन के ज्ञाता, नाट्यकला-शिल्प के मर्मज्ञ तथा विभिन्न भाषाओं के जानकार होने चाहिए ताकि वे नाट्य संप्रेषण के विषय में निर्णय कर सकें।सम्यक्नाट्य-संप्रेषण के लिए नाट्य-प्रदर्शन का व्यवधान रहित होना चाहिए। लेकिन संयोग अपने वश में नहीं है।नाट्य में घात(विघ्न-बाधा) तीन तरह से होता है -दैवसमुत्थत, आत्म समुत्थत और पर समुत्थत। प्राकृतिक आपदा, आकस्मिक दुर्घटना और हिंसक प्राणियों का नाट्य-स्थल में घुसना दैवसमुत्थतहै। किसी नाट्यकर्मी को लालच देकर फोड़ लिया जाना, नाट्यप्रदर्शन के दौरान जोर से रोना, चीखना, अवांछित वस्तुएँ फेंकना आदि परकृत घात हैं।नशेड़ी, पागल जैसों का प्रवेश औत्पातिक घात है।नाट्यकर्मी का घबरा जाना, गलत भूमिका करना या भूमिका भूल जाना, अस्त-व्यस्त अंग-संचालन अर्थात दोषपूर्ण अभिनय आत्म समुत्थत घात हैं।(अध्याय पचीस)

नाट्य-सम्प्रेषण कितना समर्थ है यह कैसे जाना जाय? नाट्यशास्त्र अभिनय की सफलता अर्थात सिद्धि को समझने के तरीके बताता है। सिद्धियाँ दो हैं : दैवी और मानुषी।मानुषी सिद्धि तब होती है जब दर्शक अभिनय से प्रभावित होकर हास्य

या विपर्यस्त स्थिति में अपनी भावनाओं को शाब्दिक रूप में (जैसे किमुस्काना, अपहास या हास करना, साधु-साधु कहना, कष्ट है [हाय, हाय कहना] आदि या शारीरिक रूप में (जैसे कि पुलकित-रोमांचित होना, खड़े हो जाना फूल,वस्त्र या अंगूठी उतारकर अभिनेता की ओर फेंकना आदि) व्यक्त करें तो इसे मानुषी सिद्धि (सफलता) समझें।दैवी सिद्धि की प्राप्ति तब समझना चाहिए जब नाट्यमण्डप पूरा भरा हो, शांत हो, और किसी प्रकार की अशांति या उपद्रव न हो।(अध्याय पचीस)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नाट्यशास्त्र,नाट्य-सम्प्रेषण और उसके सामाजिक प्रभाव को नाट्य सिद्धि के केंद्र में रखता है।

निष्कर्ष

रंगकर्मी और दर्शक की मन:स्थितियों का विशद विवेचन करने वाला तथा प्रभावशाली नाट्य-सम्प्रेषण पर विचार कर तदनुरूप युक्तिओं का विधान करने वालेप्राचीनतम ग्रन्थ के रूप में नाट्यशास्त्र का महत्त्वविर्विवादहै।सम्प्रेषण की दृष्टि से विचार करते हुए ऐसा लगता है कि तत्कालीन नाट्य प्रयोक्ताओं ने नाट्य को सम्प्रेषणके प्रभावी माध्यम के रूप में ग्रहण किया था। यही कारण है कि नाट्यप्रयोग की विभिन्न युक्तियों का विधान करते हुए घातरहित(निर्विघ्न) संप्रेषण का विशेष ध्यान रखा गया।महत्त्वपूर्ण यह है कि नाट्यशास्त्र का प्रणेता छत्तीस अध्यायों में नाट्यप्रयोग का समस्त शास्त्रीय विधान करने के उपरांत नाट्य-प्रयोग के लिए लोक को ही नाट्य का सबसे बड़ा प्रमाण मानता है-'इस स्थावर जंगम(जड़-चेतन) लोक की भाव और चेष्टाओं का निर्णय शास्त्र से संभव नहीं। लोक में विभिन्न प्रकार के स्वभाव वाले लोग होते हैं और स्वभाव में ही नाट्य प्रतिष्ठित है। इसलिए नाट्यप्रयोक्ता को लोकप्रमाण को स्वीकार करना चाहिए।(अध्याय पचीस-छब्बीस)

सन्दर्भ-निर्देशReferences

1. त्रिपाठी,राधावल्लभ;(2009), संक्षिप्त नाट्यशास्त्रमअ.1,(12-13), वाणी प्रकाशन, दिल्ली.
2. वही, 1/38-52
3. वही, 1/8-16
4. वही, 1/ 8-9
5. थापर, रोमिला;(2003), अर्ली इंडिया, पेंग्विनबुक्स, दिल्ली, पृ. 209 तथा (2001), कल्चरलट्रांजेक्शंस एंड अर्ली इंडिया, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, पृ. 28-29
6. बिस्कीं, एम.सी;(2007) 'द मिथऑफ़ द ओरिजिनऑफ़थियेटर एंड इट्ससोश्यो-हिस्टोरिकलइम्पोर्ट', श्रीनिवासन अमृत (संपा.), 2007, अप्रोचेज़टूभरताज़नाट्यशास्त्र, संगीत नाटक अकादमी तथा होप इंडिया पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. 172-174

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची Bibliography

7. Elam, Keir ; (1980), The Semiotics of Theatre and Drama, Routledge, London.

8. रंगाचार्य, आद्य ;(2010), द नाट्यशास्त्र : इंग्लिश ट्रांसलेशन विथक्रिटिकलनोट्स, मुंशीराममनोहरलालपब्लिकेशन, दिल्ली

9. गैरोला,वाचस्पति;(2013), भारतीय नाट्य परंपरा और अभिनव दर्पण, चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली

10. द्विवेदी, हजारी प्रसाद ;(2007), नाट्यशास्त्र की भारतीय परंपरा और दशरूपक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

11. मेहता,तरला ;(1995), संस्कृत प्ले प्रोडक्शन इन एन्शिएन्टइण्डिया, मोतीलालबनारसीदास, दिल्ली

12. वरदपाण्डेय,एम. एल ;(1983), रिलिजन एंड थियेटर, अभिनव पब्लिकेशन, दिल्ली

13. Crowely, David; Mitchell, David ;(1994), Communication Theory Today, Stanford Univ.Press, California.

14. Berger, Asa Arthur ;(1995), Essentials of Mass Communication Theories, Sage Publication, London-Delhi.

**** Corresponding Author***
द्विवेदी आनंद प्रकाश शर्मा
एसोसिएटप्रोफ़ेसर (हिन्दी)
दिल्ली कॉलेजऑफ़आर्ट्स एंड कॉमर्स, दिल्ली विश्वविद्यालय
Email: dapsdu@gmail.com, Mobile: +91 98 6855 4484